ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-1* February-2017
Innovation The Research Concept

पूर्व मध्यकालीन इतिहास में सामाजिक परिवर्तन के स्वरुप

सारांश

पूर्व मध्यकाल का इतिहास सम्पूर्ण भारतीय इतिहास का सर्वाधिक रुचिपूर्ण और अत्यधिक महत्वपूर्ण चरण है। इस काल के इतिहास को परिवर्तन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। भारत के इतिहास में हर्ष की मृत्यु के बाद से लेकर राजपूत वंशों के शासन तक के काल को सामान्य तौर से पूर्वमध्यकाल कहा जाता है। जहां एक ओर सामन्तवाद के उदय ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को प्रभावित किया वहीं दूसरी ओर पूर्व मध्यकाल से चली आ रही व्यवस्था के निरन्तर सुदृढ़ होने के लक्षण भी पूर्व मध्यकालीन समाज में देखने को मिलते है। इस काल को सामन्तवाद, नगरों का पतन और उत्थान, नवीन सामाजिक परिवर्तनों का काल, क्षेत्रीय भाषा और क्षेत्रीय धर्म का काल अथवा मन्दिरों का युग के नाम से भी जाना जा सकता है।

मुख्य शब्द : सामन्तवाद, इतिहास, धर्मशास्त्र, शूद्र, वैवाहिक सम्बध।

जितेन्द्र सिंह नौलखा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
के0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज,
ज्ञानपुर, भदोही,
उ0 प्र0

कमलेश कुमार पाल
शोध छात्र
प्राचीन इतिहास विभाग
के0एन0पी0जी0 कॉलेज,
ज्ञानपुर, भदोही,
उ0 प्र0

प्रस्तावना

डॉ0 ईश्वरी प्रसाद ने मध्यकालीन ऐतिहासिक काल के भारत को 'राज्य के अन्दर राज्यों का काल' कहा है। जिस प्रकार एक व्यक्ति एक माह या एक वर्ष में अचानक नहीं बदल जाता उसी प्रकार समाज भी अल्प समय में नहीं बदलता, बल्कि समय लगता है। समाज में ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। वे शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट आधार का पालन करते थे, वेद–वेदांग तथा अन्य शास्त्रों में पारंगत होते थे। उन्हें आचार्य, उपाध्याय कहा जाता था। भूमि अनुदानों की अधिकता के कारण ब्राह्मणों में दृढ़ स्थानीयता की भावना विकसित हो गयी। जिसके परिणामस्वरुप पूर्वमध्यकाल में इनकी अनेक उपजातियाँ बन गयी। राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय के एक लेख में उत्तर भारत के ब्राह्मणों के पॉच वर्गो का उल्लेख मिलता है– सारस्वत्, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल तथा गौड़। सभाश्रृंगार में 34 प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। हेमचन्द्र ने कलिंग, सुराष्ट्र, अवन्ति तथा काशी के ब्राह्मणों का उल्लेख किया है। अलबरुनी ने मग अथवा 'शाकद्वीपी' ब्राह्मणों का उल्लेख किया है जो ईरान से भारत आयें थे तथा सूर्य की पूजा करते थे।

उद्देश्य

पूर्वमध्यकालीन समाज में ब्राह्मणों को अपने निर्दिष्ट व्यवसायों में आजीविका चलाना कठिन हो गया। आर्थिक विवशताओं ने ब्राह्मणों को अन्य व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य किया। इस काल में अधिकांश ब्राह्मणों ने कृषि करना प्रारम्भ कर दिया था। स्मृतिकार पराशर ने ब्राह्मण के लिए कृषि एक सामान्य व्यवसाय बताया है, बशर्ते वे स्वयं खेती न करें। इस काल के अभिलेखों में ब्राह्मणों को भूमिदान किये जाने का उल्लेख विशेष अर्थ रखता है। भूमिदान ग्राही कुलीन ब्राह्मण शूद्रों के द्वारा कृषि करवाते थे। जो ब्राह्मण अपने मूल कर्म एवं जातीय स्तर को छोड़कर क्षत्रियों के कार्य को अपनाने लगे वे ब्रह्मक्षत्रिय कहलाने लगे थे।[1]

ब्राह्मणों के ही सामान क्षत्रिय वर्ण इस समय दो भागों में बॅट गया। पहला शासक वर्ग तथा दूसरा जागीरदार वर्ग था जबकि दूसरे में सामान्य क्षत्रिय थे। पराशर ने कृषि को सामान्य क्षत्रिय की भी वृत्ति बताया है। पुराणों में ब्राह्मणों की पूजा को क्षत्रिय के प्रमुख कर्तव्यों में रखा गया है। क्षत्रियों से उच्चतम स्तर का दावा करने वाले क्षत्रिय को सत्क्षत्रीय कहा जाता था। इस वर्ण के अन्तर्गत हम इस काल में 'राजपूत' नामक एक वीर एवं स्वाभिमानी जाति का आविर्भाव पाते है।

वर्ण व्यवस्था के तीसरे स्तम्भ वैश्यों की स्थिति में गिरावट आई अल्तेकर[2] और रामशरण शर्मा[3] का यह मत है कि पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज में वैश्य निश्चित रुप से शूद्रो की स्थिति तक आ गये। इसी संदर्भ में अलबरुनी का मत है कि वैश्य व शूद्र में कोई अन्तर नहीं था।

यद्यपि वे वह एक–दूसरे के विपरीत थे, तथापि एक ही घर व मोहल्लों में साथ रहते हुए उसी गॉव में रहते थे।[4] रामशरण शर्मा ने भी वैश्यों की अवस्था में पतन स्वीकार किया है।[5] जिसका प्रधान कारण उन्होनें पूर्व मध्यकाल के प्रथम चरण में व्यापार–वाणिज्य का हास माना है। धर्मशास्त्रकारों ने कृषि पशुपालन और व्यापार वैश्यों के प्रमुख कर्तव्य बताये थे, किन्तु पूर्वमध्यकाल में वैश्यों ने कृषि कर्म छोड़ दिया। वैश्य वर्ग ने अपने को व्यापारिक क्षेत्र तक सीमित कर लिया। पराशर स्मृति में 'कुसीद वृत्ति' (सूद पर रुपये उधार देना) वैश्य वर्ग का प्रमुख व्यवसाय बताया गया है। इसी स्मृति में वैश्यों तथा शूद्रों के लिए समान रुप से कृषि, वाणिज्य तथा शिल्प कार्य करने का विधान किया गया है।[6] पूर्व मध्यकाल तक आते–आते वैश्यों के कार्यो में अपेक्षाकृत कमी आई थी। अलबरुनी के अनुसार वैश्यों का धर्म है– खेती करें, भूमि को जोतें, पशु पालें और ब्राह्मणों की आवश्यकता को पूरा करें।[7] उनके इस कथन से वैश्य वर्ग के अन्य कार्य, जैसे व्यापार करने, वेद पढ़ने और व्याज लेने का पता नहीं चलता। इस काल में वैश्य वर्ग शूद्रों के समकक्ष दिखाई देने लगा। पूर्व मध्यकालीन ग्रन्थ भी इस बात की पुष्टि करते है, उदाहरणार्थ– विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि कलयुग में वैश्य कृषि तथा व्यापार छोड़ देगें तथा अपनी जीविका दास कर्म एवं कलाओं द्वारा कमायेगें।[8] धर्मशास्त्रकारों द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी थी कि ब्राह्मण व क्षत्रिय की रक्षा के लिए वैश्य शस्त्र ग्रहण कर सकता है।[9] मनु के अनुसार वैश्य निषिद्ध कर्मो का त्याग करते हुए अर्थात द्विजों की सेवा करने में जूठन आदि न खाते हुये शूद्र वृत्ति अपना सकता है।[10] जबकि वैश्य के आपद् धर्म पर मेघातिथि का भाष्य है कि वह शूद्रों की तरह पैर–प्रक्षालन करता था, जूठा खाता था और अन्य निम्न कार्य सम्पन्न करता था, किन्तु जब उसका संकटकाल बीत जाता था तो वह इन कार्यो को त्याग देता था।[11] कुल्लूक ने भी यह मत स्वीकारा और मनु के उपर्युक्त कथन पर अपनी टिप्पणी की, कि वैश्य द्विजाति की सुश्रुषा और उच्छिष्ट भोजन ग्रहण करने जैसे निम्न कार्य केवल तभी कर सकता है, जब वह संकटग्रस्थ रहता था। अपनी स्थिति सुदृढ़ होते ही वह इन कर्मो का परित्याग करके प्रायश्चित करता था।[12] गौतम के अनुसार वैश्य आपत्तिकाल में अपने नीचे वर्ण का धर्म ग्रहण करता था।[13] अतः हम कह सकते है कि वैश्य वर्ग आपत्तिकाल में क्षत्रिय तथा शूद्र के कर्म भी अपना सकता था।

पूर्व मध्यकालीन समाज में शूद्र वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ। ये वर्ग कृषि का कार्य करने लगे थे जो पूर्व काल में वैश्यों का प्रधान कार्य था। जिसके कारण वैश्य और शूद्र में अन्तर कर पाना कठिन हो गया था। मेघातिथि व विश्वरुप दोनों ने यह स्वीकार किया है कि शूद्र न केवल सेवक बनाये जा सकते है और ना ब्राह्मण पर निर्भर किये जा सकते है, वे व्याकरण तथा अन्य विधाओं के शिक्षक हो सकते है।[14] जबकि शास्त्री व्यवस्था शूद्र वर्ग के लिए अनुदार ही रही। पराशर तथा लघुव्यास आदि स्मृतियों में शूद्र के हाथ के भोजन तथा उनसे सम्पर्क वर्जित है। मेघातिथि[15] ने शूद्रों के सेवाकार्य तथा इनमें से कुछ वर्णो के दासत्व को स्वीकार करते हुए भी शूद्रों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान की है। स्कन्द पुराण में शूद्रों की 18 उपजातियों का उल्लेख मिलता है–शिल्पी, बढ़ई, कुम्हार, चित्रक, वार्धिक, सूत्रक, धोबी, गच्छक, जुलाहा, तेली, चमार, शिकारी, बाजा बजाने वाला, कोल्हिक, मच्छुआ, औनामिक तथा चण्डाल सभी शूद्र वर्ण के अन्दर आते थे। बी0एन0एस0 यादव ने व्यवसायों के आधार पर अतिसुक्ष्म सर्वेक्षण करते हुए शूद्रों की उपजातियों के भीतर भी उपजातियों की बात की है और इस संदर्भ में उन्होंने चर्मकारों की दो कोटियों को विशेष रुप से उद्धित किया है– एक वह चर्मकार जो जूता बनाता था, दूसरा जो चमड़े के कार्य से जुड़ा था।[16]

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज शूद्रों को वेदाध्ययन की सुविधा से वंचित करते हुए उसे चार आश्रमों में से केवल एक आश्रम गृहस्थ आश्रम, की छुट देता है।[17] यदि वे कुछ संस्कार सम्पन्न भी करते थे तो बिना वैदिक मंत्रों के ही।[18] लघुविष्णु स्मृति में लिखा है कि शूद्र केवल पंचमहायज्ञ सम्पादित कर सकता था और वह भी बिना वैदिक मंत्रोंचार के[19]। इसी तरह अत्रिसंहिता[20] का विवरण है कि शूद्र न तो जप कर सकता है और न ही हवन कर सकता था। यदि वह इन नियमों का उल्लघंन करता है तो उसे दण्ड देने का विधान कतिपय धर्मशास्त्री ग्रंथो में किया गया है।[21] इस काल में अछूतो की संख्या में वृद्धि हुई। अछूतों को 'अन्त्यज' कहा गया, जो गॉव तथा नगरों की सीमाओं के बाहर निवास करते थे। अलबरुनी ने धोबी, मोची, मछुआ, माझी, शिकारी, बुनकर आदि को अन्त्यज कहा है। इस काल में छूआछूत की भावना की प्रबलता की अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अपरार्क तथा विज्ञानेश्वर जैसे लोगों ने यह मत व्यक्त किया कि चण्डाल की छाया मात्र पड़ने से ही व्यक्ति अपवित्र हो जाता है।

इस काल में दास प्रथा में भी वृद्धि हुई। केवल राजा, सामन्त और गृहस्थ के यहां ही नहीं वरन बौद्ध मठों, वैष्णों, शैव मन्दिरों में दास रहते थे। इस काल में दास–दासियों को दान में देने की प्रथा बहुत प्रचलित हो गयी थी।

सामाजिक परिर्वतन की दृष्टि से यदि हम पूर्व मध्यकालीन समाज में नारी पर विचार करे तो दो विचारधाराओं का अस्तित्व दिखाई पड़ता है। एक ओर नैतिकता और आदर्श की प्रतिमूर्ति दिखायी पड़ती है वही दूसरी तरफ नारी को कठोर हृदय वाली, अविवेकी, बुराई का भण्डार कहा गया है।[22] परिवार के सदस्यों के बीच सम्बन्ध स्थापना, गृह के निर्माण, संचालन और पालन में महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसी कारण से उसे ''गृह'' की सामग्री कहा गया है। परन्तु पूर्वमध्यकाल माता के रुप में तो नारी आदर का पात्र रहीं परन्तु पत्नी के रुप में उसकी स्थिति में गिरावट आई। इस काल में विवाह संस्कार को ही स्त्री के लिए महत्वपूर्ण माना गया।[23] तथा आठ प्रकार के विवाहों का विधान रखा गया था। विवाह के आठ पारम्परिक प्रकार में से चार प्रकार जिसके अन्तर्गत ब्रह्म, देव, आर्ष और प्रजापत्य आते है। ये विवाह सभी वर्णो के लिए थे और गान्धर्व एवं राक्षस विवाह केवल क्षत्रियों के उपर्युक्त थे। जिसके उदाहरण पूर्वमध्यकाल में देखने के लिए मिलते है[24] जैसे– गहड़वाल राजकुमारी संयोगिता का

चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय से विवाह राक्षस विवाह का ही एक ऐतिहासिक उदाहरण है।[25] जिसकों श्री पी0वी0 काणे ने गान्धर्व और राक्षस विवाह का मिश्रण बताया है।[26] अतः इस काल में मुख्यरुप से गांधर्व, राक्षस, ब्रह्म और प्रजापत्य विवाहों का अस्तित्व भी दिखाई पड़ता है। विष्णु[27] स्मृति में प्रजापत्य में कन्या को जल के साथ प्रदान करने का विधान है। इस युग में स्त्री के विवाह की आयु के सम्बन्ध में दो धारणायें आती है जहां एक ओर राजश्री व महाश्वेता है। इनका विवाह युवावस्था में हुआ था।[28] वही दूसरी ओर मेघातिथि में आठ वर्ष की आयु में विवाह करने की सलाह भी है।[29] अलबरुनी के विवरण से पता चलता है कि समाज में अधिकतर बाल–विवाह प्रचलित थे उन्होंने लिखा है कि 12 वर्ष की अधिक उम्र की कन्या को विवाह की अनुमति नहीं थी।[30] इस काल तक आते–आते स्त्रियों की स्थिति में सबसे बड़ा सामाजिक परिर्वतन सती प्रथा का प्रचलन था। डॉ0 काणे ने लिखा है[31] लिखा है कि पूर्वमध्यकाल के आगमन तक इस प्रथा ने समाज में अपनी जड़े दृढ़ कर ली थी। राजेश्वर ने उत्तर भारत के राजपूतों में सती प्रथा के विशेष रुप से प्रचलन का उल्लेख किया है।[32] इस काल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह भी दिखता है कि सती नारी की स्मृति में सती स्तम्भ उत्कीर्ण कराने की प्रथा चल पड़ी। मध्य–प्रदेश में नालोद नामक स्थान में अनेक सती स्तम्भ प्राप्त हुए है।[33] इस काल में विधवा विवाह में परिवर्तन स्पष्ट रुप से दिखाई पड़ता है। समाज में इनकी दशा बहुत शोचनीय थी। महेन्द्र पाल के पेहावा अभिलेख में भी विधवाओं की दयनीय स्थिति का मार्मिक वर्णन मिलता है।[34] इस युग में स्वयंबर प्रथा का अतित्व में आना स्त्रियों की स्वतंत्रता का परिचायक थी। इसके अलावा वैवाहिक सम्बन्धों में आयी संकीर्णता के कारण नारी की स्थिति में एक परिवर्तन यह हुआ कि समाज में बहु–पत्नी प्रथा का प्रचलन हो गया।

निष्कर्ष

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में समाज के जातिगत विघटन की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी थी। इस काल में स्पष्टतः हम सामाजिक संगठन में हास के लक्षण देखते हैं। विभिन्न वर्णो एवं जातियों के लोग अपने–अपने कर्तव्य–कर्मो के प्रति उदासीन हो गये। कुलीन वर्गो में सुख एवं वैभव की चाह अधिक हो गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अपने परम्परागत कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से विमुक्त होकर भोग–विलास में लिप्त हो गये। सामन्ती मनोवृत्ति प्रबल हो गयी, अस्पृश्यता की भावना पहले की अपेक्षा अधिक प्रबल हो गई। समाज में उच्च तथा निम्न वर्गो का अन्तर बहुत अधिक बढ़ गया। इस्लाम के प्रसार ने हिन्दू समाज को संकीर्ण एवं अर्न्तमुखी बना दिया, अब सामाजिक संगठन पूर्णतया प्रतिरक्षात्मक हो गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. यादव, वी0एन0एस0, *सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया इन द ट्रवेल्थ सेंचुरी ए0डी0* पृ0 174–75
2. अल्टेकर, *ए0एस0 ए राष्ट्रकूटाज एण्ड देअर आइम्स*, पूना, 1939, पृ0 332–334
3. शर्मा, रामशरण, *शूद्राज इन ऐशियन्ट इण्डिया*, द्वितीय संस्करण, वाराणसी 1980 पृ0 68।
4. मिश्र, जयशंकरः ग्यारहवीं सदी का *भारत*, वाराणसी 1968, पृ0 117
5. शर्मा, रामशरण पूर्वो0, पृ0 15–16
6. झा एवं श्रीमालीः *प्राचीन भारत का इतिहास*, दिल्ली 1981, पृ0 375
7. मिश्र जयशंकर पूर्वो0 पृ0 117
8. यादव, बी0एन0एस0, *द एकाउन्ट्स ऑफ द कलि एज एण्ड द सोशल ट्रान्जीशन फ्रॉम एन्टीक्विटी दू द मिडिल ऐजज, द इण्डियन हिस्ट्रोरीकल रिव्यू*, 1979.
9. बौधायन, *धर्मसूत्र,* 2.2.80
10. *मनुस्मृति,* 10.48
11. मेघातिथि, *मनुस्मृति,* 10.98
12. कुल्लूक, *मनुस्मृति,* 10.98
13. गौतम *धर्मसूत्र,* 726
14. मेघातिथि और विश्वरुप, *मनुस्मृति,* 3–67, 121, 156, 10–127
15. मघातिथि, *मनुस्मृति,* 8–415
16. यादव, बी0एन0एस0 पूर्वो0
17. मेघातिथि, *मनुस्मृति पर टीका*, जिल्द–6, पृ0 97
18. शर्मा, बी0एन0 *सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया*, दिल्ली 1966, पृ0 53
19. *लघु विष्णु स्मृति*, 59
20. *अत्रिसंहिता*, 19।
21. द्वारा उद्धत–यादव, बी0एन0एस0, पूर्वो0
22. ईश्वरी प्रसाद, *भारतीय इतिहास, संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म तथा दर्शन* : इलाहाबाद 1990, पृ0 393।
23. *कथासरित्सागर*, भाग–2, 8.4, 104।
24. *शंख स्मृति*, 4.3
25. *पृथ्वीराज विजय*,जंगम कथा,पृ0 548–44 पद्य 5,6, 7।
26. काणे, पी0 वी0, *धर्मशास्त्र का इतिहास*, प्रथम भाग, लखनऊ 1963, पृ0 299
27. *विष्णु स्मृति*, 24.22
28. मिश्र, उर्मिला, प्रकाश, *प्राचीन भारत में नारी*, भोपाल, 1989 पृ0 60
29. *मनुस्मृति* पर मेघातिथि की टीका, 9.4
30. सचाऊ, एडवर्ड, *अलबेरुनीज इण्डिया*, भाग–2 लंदन 1910 पृ0 131
31. मिश्र, उर्मिला, प्रकाश, पूर्वो, पृ0 105
32. प्रसाद, ईश्वरी, पूर्वो0, पृ0 414
33. *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट्स*, भाग–7, 1871–72, पृ0 136।
34. *एपिग्राफिया इंडिका*, जिल्द 16, पृ0 246, पंक्ति 16।